‘इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में सृजन की चुनौतियाँ’

संकायमानविकी-

विषय हिन्दी-

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

की पी उपाधि .डी.एच-के लिए प्रस्तावित

शोध प्रारूप-

संकायमानविकी-

विषय हिन्दी-

शोध निर्देशिका

डॉ० बिभा कुमारी
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी-विभाग
वी०एस०जे० कॉलेज, राजनगर
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा

गवेषिका :

लक्की कुमारी
हिन्दी-विभाग
पैट क्रमांक– 22090214
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा

प्रस्तावित शोध-शीर्षक:

'इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में सृजन की चुनौतियाँ'

विषय का महत्त्व:

इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दी रंगमंच अपने निजी व्यक्तित्व की पहचान निर्मित करने के लिये नयी रंगशैलियों का अन्वेषण और प्रयोगों की विविध प्रक्रियाओं से गुजर कर एक निश्चित स्वरूप तथा अवस्था प्राप्त करने की ओर अग्रसर है। हिन्दी का नाटक, नाटककार और रंगमंच संघर्ष से जूझते रहे हैं जिसकी एक गंभीर दिशा यह बनी है कि अपनी अस्मिता को अन्वेषित करने तथा पुनर्विश्लेषित करने की प्रवृत्ति बढ़ गयी है। नाटक और रंगमंच का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। समय के साथ-साथ अन्य परिस्थितियाँ और समाज भी परिवर्तनशील है। दृश्यकाव्य होने के कारण नाटक की सार्थकता तभी संभव है जब वह शिल्प के सामंजस्य के साथ रंगमंच पर प्रस्तुत हो। नाटक सामाजिकों के समक्ष उत्सव के रूप में सम्पन्न होता है। आचार्य भरतमुनि ने इस उत्सव को 'चाक्षुस यज्ञ' की संज्ञा दी है। सामाजिक उसी रस का आस्वाद लेता है।

नाटक रंगमंच के माध्यम से प्रस्तुत होता है। पर कभी-कभी स्थिति यह आ जाती है कि नाटककार और नाट्यप्रयोक्ता में विवाद उत्पन्न हो जाता है। इसका कारण है कि नाटककार स्वेच्छा से नाटक की रचना करता है और नाट्यप्रयोक्ता रंगमंच की अनुकूलता के कारण इसमें परिवर्तन करना चाहता है। इस प्रकार वह अनभिनेय मानकर पूरे नाटक को अपनी दृष्टि से परिवर्तित करना चाहता है। पर, नाटककार ऐसा करना नहीं चाहता। डॉ० सीताराम झा ने कहा है, 'नाट्य सामूहिकता की भावना पर आधृत एक विलक्षण रंग प्रयोगात्मक मिश्रित कला है।' लोको ने लिखा है, 'मानवीय बनने की प्रक्रिया का काव्य ही रंगमंच है।'

बौद्धिक विमर्श, नये प्रयोग और समय तथा समाज के प्रश्नों से टकराने का सृजनात्मक अवसर उपस्थित करने के कारण रंगमंच को प्रयोग की भूमि कही गयी है। यह वह प्रयोग भूमि भी है जहाँ रचनात्मकता की जिजीविषा को त्वरा दे सकने वाले प्रयोगों के बदले अराजक और दृष्टिहीन प्रयोगों के कारण रंगमंच से सामाजिकों की दूरी बढ़ी है। यह मात्र संप्रेषण का माध्यम नहीं, संस्कृति का अभिन्न अंग भी है। यह संस्कृति का संवाहक भी है।

यह अकेले लेखक और निर्देशक का नहीं, यह एक जनतांत्रिक कला है। अतः लाजिमी है कि इसके एकाधिकार और शुचितावाद से उबरना होगा। आज इक्कीसवीं सदी में मौलिक नाट्य लेखन के प्रति उदासीनता अधिक है। जयदेव तनेजा ने कहा है कि 'हिन्दी नाटककारों की प्रजाति खत्म हो चुकी है। नाटककार को रंगमंच से अलविदा कहा जा चुका है। मौलिक हिन्दी नाट्य लेखन का क्षेत्र एकदम बंद और उजाड़ पड़ा है। नये और अच्छे मंथन योग्य नाटकों के अभाव के कारण ही रंगकर्मियों को पुराने और बहुमंचित मौलिक अथवा अन्य भाषाओं के देशी-विदेशी अनुवादों को बार-बार अभिमंचित करना पड़ता है। फिर भी सच ये है कि हम चार-पाँच वर्ष के अंतराल से कोई-न-कोई प्रबल संभावनापूर्णनया नाटककार या नाटक रंगमंच पर चर्चित और प्रशंसित होकर हमारे इस सामने खड़े किये गये भ्रम को तोड़कर अनायास चुनौती खड़ी कर देता है।'

नाटककार अपनी रचना के माध्यम से जोड़ता है। पर, आज की स्थिति यह है कि मानवीय संवेदनायें तेजी से परिवर्तित हो रही हैं। इस यांत्रिक युग में भी कुछ ऐसी नाट्य रचनायें हैं जो अतीत के राख में दबी चिनगारी की तरह प्रकट हुई। उन्हीं में से कृष्ण बलदेव वैद का नाटक 'भूख आग है', असंतोष में अति महत्त्वाकांक्षा और धनलिप्सा मनुष्य को मनुष्यता से दूर करती है, यह वर्णित किया गया है। साथ ही आज के मनुष्य ने भूख की आग के ताप को अनुभव करना ही भुला दिया है। इक्कीसवीं सदी के नाटक की यह विशेषता है कि उनमें समाज से संबंधित प्रश्नों के साथ ही संभावनाओं के उत्तर भी दृष्टिगत होते हैं जहाँ समाज की विसंगति उभर कर सामने आती है। महेन्द्र भल्ला का नाटक 'उस चीज के ऐन आमने-सामने' में

अकेले रह रहे अभिभावकों की संख्या में वृद्धि, अविश्वास, आजीविका की तलाश और सुविधाओं से दूर मनुष्य को चित्रित किया गया है। कुष्ण बलदेव वैद का नाटक 'सवाल और स्वप्न' में दाम्पत्य प्रेम के बीच अन्य की उपस्थिति से उत्पन्न द्वंद्व की स्थिति का चित्रण किया गया है। त्रिपुरारी शर्मा का नाटक 'पोशाक' में युवाओं के आंतरिक बाह्य संघर्षों को दर्शाया गया है। नादिरा जहीर बब्बर का नाटक 'दयाशंकर की डायरी', मध्यवर्गीय आदमी की कुंठा, त्रासदी और हीन भावना को उपस्थित करता है। दयाप्रकाश सिन्हा का 'रक्त अभिषेक' नाटक यह बताने का प्रयास करता है कि अहिंसा की स्थापना के लिये हिंसा का प्रयोग दंडनीय नहीं है।

आज यथार्थ के धरातल पर सामाजिक संदर्भ का लोप हो रहा है। सुशीला के नाटक 'रंग और व्यंग्य' में यह देखा जा सकता है। विभा रानी का नाटक 'आओ तनिक प्रेम करें' दाम्पत्य-जीवन के अंतिम पड़ाव में जीवन की रिक्तता चित्रित है। मीराकांत का नाटक, 'कंधे पर बैठा था शाप' तीन नाटकों का संकलन है। इसे भी जीवन की शांति बनाये रखने वाली संजीवनी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। डॉ० लव कुमार ने इस संदर्भ में कहा है कि 'नये नाटकों ने सबसे पहले जनसाधारण और उनके जीवन की वास्तविकताओं को रचना के केन्द्र में लाया है। उसे और उसकी दैनन्दिनी की समस्याओं, संघर्षों तथा जीवन के नाटक की पहचान कर तथा रंगमंच के प्रति उसकी सोच को समझ कर उसे अपनी रचना का विषय बनाया और नाट्य विधान का लक्ष्य उन तथाकथित संवेदनाओं का दृश्य संप्रेषण रखा है।'

आज के नाटकों का मुख्य उद्देश्य प्रेक्षक को चिन्तन के लिये प्रेरित करना है। आज वर्तमान समस्याओं पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। बाल श्रम, जनसंख्या वृद्धि, न्याय में विलंब, सांप्रदायिकता, व्यक्ति का दोगलापन, पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण आदि आज के नाटकों के विषय हैं। डॉ० जयदेव तनेजा नये हिन्दी नाटकों का एक निश्चित, पूर्व निर्धारित रूपाकार नहीं है, यह मानते हैं। साथ ही वह इसे अंधों के हाथी की तरह बताते हैं। उसे वर्गों में बांटना और सिद्धांतों के आधार पर विश्लेषित करना उसका

मूल्यांकन करना उचित भी नहीं है और असंभव भी है। क्योंकि प्रयोगधर्मिता ही उसकी परिकल्पना का मूलाधार है।

इक्कीसवीं सदी के नाटक सशक्त नारी का चित्रण कर के हैं। आज की नारी स्वाभिमानिनी, विचारशील और उन्मुक्त है। वह संघर्षशील भी है। यह उसके परिवर्तनशील रूप को इंगित करता है। आज की नारी अनुगामिनी न होकर सहगामिनी अधिक है। कैलाश चंद्र का नाटक 'सावित्री' में पौराणिक सावित्री के स्थान पर आधुनिक सावित्री के रूप को प्रस्तुत किया गया है। यहाँ वह यमराज से मात्र दो दिनों के लिये ही पति के प्राण मांगती है। इन्हीं में वह सांसारिक जीवन के कार्य की पूर्ति करती है। स्त्री की यह मानसिकता आज की सामाजिक विसंगतियों की देन है। विभा रानी का नाटक 'अगले जन्म मोहे बिटिया न कीजो' में एक लोककथा को माध्यम बनाया गया है। इसके माध्यम से कौटुम्बिक व्यभिचार की शिकार स्त्री को रेखांकित करता है। नादिरा जहीर बब्बर का एक नाटक 'सकुबाई' परिचारिका स्त्री के जीवन की विडंबना एवं साहस का चित्रण करता है वहीं दूसरा नाटक 'जो जैसी आपकी मर्जी' स्त्री के साहस और विरोध को उभारता है। कन्या भ्रूण हत्या को विषय बनाकर लिखा गया डॉ० कुसुम लुनिया का नाटक 'ऊंची उड़ान' एक बेहतरीन नाटक है। नाटक में कन्या भ्रूण हत्या का विरोध करती माँ दीप्ति का प्रेरक रेखांकिन है। महेश दातानी का बहुचर्चित नाटक 'तारा' भी इसका सुंदर उदाहरण है।

आज के नाटक जीवन की बदलती हुई परिस्थितियों पर पैनी नजर रखते हैं। यह बात असगर वजाहत के नाटक 'गोडसे @ गाँधी.कॉम' में मजबूती से दिखाई पड़ती है। यह नाटक गाँधी और गोडसे के बीच संवाद को आधार बनाकर आज के संभावित प्रश्नों को उठाता है। नन्द किशोर आचार्य ने भी 'बापू' नाटक के माध्यम से महिमावान पौराणिक व्यक्तित्व के रूप में नहीं, वरन ऐसे बापू को देखा, जो हमारे अपने समय में, कालखंड में हमारे इतने निकट है कि हम उन्हें छू सकते हैं, उनकी आवाज को सुन सकते हैं और उनकी साँसों की गर्माहट भी महसूस कर सकते हैं।

इक्कीसवीं सदी के नाटक सभी पूर्वाग्रहों को तोड़ते हैं और नये मूल्य और प्रतिमान गढ़ते और स्थापित करते हैं। आज के सभी पक्ष इक्कीसवीं सदी के नाटक में देखने को मिलते हैं। इक्कीसवीं सदी का हिन्दी नाटक और रंगमंच बहुआयामी और शिल्प और प्रयोगों से आंतरिकता और संवेदना के संबंध सघन करता हुआ विकसित हुआ है। इसके साथ ही आपसी विरोधों के बीच सृजन की उष्मा और चुनौतियाँ भी नाटक और रंगमंच को नया विस्तार दे रही हैं। इक्कीसवीं सदी का नाट्य साहित्य और रंगमंच बहुआयामी और शिल्प और प्रयोगों से आंतरिकता और संवेदना के सम्बन्ध सघन करता हुआ विकसित हुआ है। इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटक और रंगमंच दोनों ही अपने स्वरूप को पहचानने और विरोधात्मक परिस्थितियों के होते हुये भी सर्जनात्मक सम्बन्धों और समकालीन अनुभवों, चिन्तन, संभावनाओं और सार्थकता की अन्वेषण-प्रक्रिया में संलग्न हैं।

स्पष्ट है कि इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटक और रंगमंच को सर्जन की चुनौतियाँ तो झेलनी पड़ रही है किन्तु वह एक नये रूप और तेवर के साथ उभर भी रहा है। अत: शोध-प्रबंध में इस तथ्य पर गहराई से विश्लेषण किया जायेगा कि इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटक और रंगमंच की सर्जनात्मक चुनौतियाँ अनुभव-संसार का दस्तावेज है। अत: प्रस्तावित शोध-शीर्षक को मौलिक माना जा सकता है।

शोध की आवश्यकता/उपयोगिता:

प्रस्तावित शोध-विषय पर शोध की आवश्यकता इसीलिये है कि संबंधित विषय का अनुशीलन अब तक शोधपरक दृष्टि से नहीं हुआ है। इस विषय के भीतरी तथ्यों का समाज एवं साहित्य के सुधी पाठकों के सामने आना आवश्यक हैं। इससे एक नवीन साहित्यिक और सामाजिक दृष्टि विकसित हो सकेगी।

पूर्व में किये गये एतद, सम्बन्धी शोधकार्य:

1) 'स्वतंत्र भारत में लिखे गये हिन्दी काव्य-नाटकों का रंगमंचीय विश्लेषण', नीलिमा मिश्रा, भोपाल, 2020

2) 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-नाटकों में नैतिक मूल्य', ए० जे० अब्राहम, कोचीन, 2014

3) 'हिन्दी के त्रासदी नाटकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन' इंदुशेखर तिवारी, भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, 1977

4) 'समकालीन हिन्दी-रंगमंच का अनुशीलन', रमिता प्रसाद गोरख, गोवा, 2013

5) 'साठोत्तरी रंगमंचीय हिन्दी नाटकों का अनुशीलन', आभा त्रिवेदी, उदयपुर, 1987

शोध-कार्य के स्रोत (आधार ग्रंथ):

1) 'अगले जन्म मोहे बिटिया न कीजे', विभारानी, किताबघर, प्रकाशन, दिल्ली, 2019

2) 'सावित्री', कैलाशचन्द्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2007

3) 'सकुबाई', नादिरा जहीर बब्बर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008

4) 'जो, जैसी आपकी मर्जी', नादिरा जहीर बब्बर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008

5) 'बापू कैद में', राजेन्द्र त्यागी, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, 2008

6) 'गोडसे @ गांधी.कॉम', असगर वजाहत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2022

7) 'गाँधी को फाँसी दो', गिरिराज किशोर, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 2011

8) 'अगिन तिरिया', रवीन्द्र भारती, राधाकृष्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011 आदि।

शोध की पूर्व कल्पना/संभावित निष्कर्ष:

विषय की दृष्टि से 'इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में सृजन की चुनौतियों की वैचारिक मौलिकता द्रष्टव्य है। नाटक की प्रस्तुति का एक मात्र साधन रंगमंच है। बिना रंगमंच के नाटक का अस्तिव केवल पठनीयता तक सीमित रह जायेगा। नाटक लिखने और उसे रंगमंच पर प्रस्तुत करने में कई बार इन्हीं अड़चनों का सामना करना पड़ता है। इसका कारण है कि नाटक स्वेच्छा से लिखा जाता है और उसे प्रस्तुत करने में रंगमंचीय अनुकूलता का ध्यान रखना पड़ता है। इसीलिये नाट्य लेखन और प्रस्तुति के बीच अगर कम-से-कम दूरी हो तो नाटक की मौलिकता पर असर नहीं पड़ता है।

इक्कीसवीं सदी के नाटक और रंगमंच विविध सामाजिक और अन्य समस्याओं को विषय बनाकर चलते हैं। ये विषय समकालीन होते हैं। इसीलिये सर्जन और मंचन की चुनौतियाँ सामने आती हैं। इन चुनौतियों से जूझकर हिन्दी नाटक और रंगमंच प्रगति कर रहा है।

प्रस्तावित शोध-प्रबंध में शोधार्थी का लक्ष्य इन्हीं तथ्यों को गवेषणापूर्ण दृष्टि से उजागर कहने का होगा। अतः यह विश्वास किया जा सकता है कि संभावित निष्कर्ष सार्थक और उद्देश्यपूर्ण होगा।

शोध की प्रविधि:

सामान्य तौर पर शोध के लिये आगमन और निगमन विधियों का प्रयोग किया जाता है। यह विद्वानों द्वारा भी मान्य है। आगमन-प्रविधि में विशेष से सामान्य की ओर और निगमन-प्रविधि में सामान्य से विशेष की ओर अभिगमन होता है। प्रस्तावित शोध-कार्य में आगमन प्रविधि का मुख्य रूप से सहयोग लिया जायेगा। गौण रूप में निगमन-प्रविधि का सहयोग भी लिया जा सकता है। आगमन-प्रविधि से संचित सामग्रियों का अवलोकन, चयन, विश्लेषण एवं विवेचन कर शोधोपयुक्त सामग्री स्वीकृत कर ली जायेगी। शोध-निष्कर्ष को अधिकाधिक प्रामाणिकता एवं उपयोगिता प्रदान करने के लिये विशेषज्ञों की राय भी ली जा सकती है।

प्रस्तावित अध्याय:

भूमिका

प्रथम अध्याय : इक्कीसवीं सदी के नाटक और रंगमंच: एक संक्षिप्त परिचय

द्वितीय अध्याय : इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटक और रंगमंच: समय और परिस्थितियों का प्रभाव

तृतीय अध्याय : इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटक और रंगमंच: समकालीन समस्याओं का चित्रण

चतुर्थ अध्याय : इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटक और रंगमंच: शिल्प और प्रयोग

पंचम अध्याय : इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में सृजन की चुनौतियाँ

उपसंहार

संभावित संदर्भ ग्रंथ-सूची:

1) 'समकालीन रंगमंच', दीनानाथ साहनी, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2003

2) 'आधुनिक हिन्दी नाटक और भाषा की सृजनशीलता', प्रेमलता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993

3) 'हिन्दी नाटक पाँच दशक', कुसुम खेमानी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011

4) 'आधुनिक नाटकः दृष्टि और शिल्प', डॉ० देवेन्द्र स्वामी, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2006

5) 'हिन्दी के प्रमुख नाटककार और रंगमंच' डॉ० विनय कुमार, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2010

6) 'आज का हिन्दी नाटक और रंगमंच', डॉ० परमलाल गुप्त, नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, 1997

7) 'नाकालोचन के सिद्धांत', सिद्धनाथ कुमार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2004

8) 'साठोत्तर हिन्दी नाटकों का प्रवृत्तिमूलक अध्ययन', डॉ० मंजु प्रसाद, मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली, 2012

9) 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकः मूल्य संक्रमण', ज्योतीश्वर मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007

10) 'हिन्दी नाटक का आत्म संघर्ष', गिरीश रस्तोगी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002

शोध निर्देशिका

डॉ० बिभा कुमारी
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी-विभाग
वी०एस०जे० कॉलेज, राजनगर
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा

गवेषिका :

लक्की कुमारी
हिन्दी-विभाग
पैट क्रमांक– 22090214
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

‘इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में सृजन की चुनौतियाँ’

<u>शोध-विषय पर संक्षिप्त विवरण</u>

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटक और रंगमंच पूर्व से थोड़े भिन्न हैं। समस्याएँ भी थोड़ी अलग हैं। नाटक के कथ्य को व्यंजित करने के लिए नाटककारों ने अलग शिल्प की खोज ही सृजन की चुनौतियाँ हैं। इन्हीं चुनौतियों का सामना करता हुआ समकालीन नाटक प्रगति की ओर बढ़ रहा है।

शोध निर्देशिका

डॉ० बिभा कुमारी
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी-विभाग
वी०एस०जे० कॉलेज, राजनगर
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा

गवेषिका :

लक्की कुमारी
हिन्दी-विभाग
पैट क्रमांक– 22090214
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा